International Journal of Information Movement Vol.2 Issue IV (August 2017)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 193-200

उग्र साहित्य में धार्मिक चेतना

डॉ. सुमन लता
हिन्दी प्रवक्ता,
राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, कुरुक्षेत्र

1.0 प्रस्तावना :

सामाजिक चेतना के अंतर्गत न केवल सामाजिक बल्कि धर्म के विविध पक्षों का चित्रण भी रहता है। प्रत्येक समाज में विविध धर्म पनपते हैं। इन धर्मों और सम्प्रदायों का मूल मंतव्य जनहित रहता है। लेकिन यह भी सत्य है कि जब व्यक्ति मानव कल्याण की आड़ में संकीर्णता के बंधनों में बंध जाता है तो समाज में साम्प्रदायिक वैमनस्य भी फैल जाता है। धर्म ही है जो मानव को पशु से इतर कर उसे सुसंस्कृत बना देता है।

रूढ़ियाँ समाज के लिए कलंक, भूत–प्रेत, टोने–टोटके, धार्मिक मिथ्याडम्बर, धर्मान्धों की विकृत मानसिकता, वर्ण व्यवस्था व अछूत व्यवस्था, पाप–पुण्य की नवीन व्याख्या, 'उग्र' जी के उपन्यास 'मनुष्यानंद' 'खुदाराम और चन्द हसीनों के खुतूत' तथा 'ऐसी होली खेलो लाल', 'मुक्ता', 'कला का पुरस्कार', 'अवतार' शीर्षक कहानी संग्रहों में ये समस्याएँ स्पष्ट उभर कर आई हैं।

2.0 धार्मिक चेतना :

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान रही है। धर्म ही मनुष्य को सही अथवा गलत की पहचान देता है। मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति धर्म ही है। धर्म का मौलिक तत्त्व आध्यात्मिक चिंतन है। भारतीय धर्म साधना में वैविध्य है अतएव इनमें विभिन्न सम्प्रदायों की आचार–व्यवहार की जीवन पद्धति एवं अध्यात्मिक चिंतन का संगम रहा है। डॉ. शशिभूषण सिंहल इस संदर्भ में लिखते हैं कि ''धर्म संस्थान कोई स्वयं और स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वह केवल समाज की भावना और व्यवस्था की जिव्हा है।''[1] धर्म आज केवल मनुष्य जीवन की पारलौकिक सिद्धि और ईश्वरीय सत्ता मात्र न होकर समन्वयात्मकता का भी प्रतीक है। वस्तुतः आधुनिक विचारक धर्म का कार्य अथवा लक्ष्य मनुष्य जीवन की पारलौकिक सिद्धि और ईश्वरीय सत्ता की अनुमति मात्र नहीं मानते हैं। इन विचारकों ने धर्म के समन्वित एवं व्यापक स्वरूप की ही कल्पना की है। मानव जीवन के प्रति सहज निष्ठा एवं कर्त्तव्य भाव की प्रेरणा देने वाला और मानव–मानव में भातृत्व भाव का सृजन व विकास करने वाला तत्त्व ही इन विचारकों के अनुसार धर्म है, ''जिनसे व्यक्ति का जीवन उन्नति का पोषक बने और सामाजिक जीवन कल्याणकारी और सर्वोदयी हो ऐसे सद्गुणों का अनुशीलन करके जिस प्रकार की जीवन प्रणाली मनुष्य बांधता–बनाता है– वह धर्म है।''[2]

पांडेय बचेन शर्मा 'उग्र' के साहित्य में निरुपित धर्म के विविध पक्षों का चित्रण इस प्रकार है–

3.0 रूढ़ियाँ समाज के लिए कलंक :

रूढ़ियाँ समाज के लिए अहितकर होती हैं क्योंकि इन्हीं रूढ़ियों के कारण समाज का विकास अवरुद्ध हो जाता है। इन्हीं रूढ़ियों के जाल में फंसे लोग विवेकपूर्ण कार्य नहीं कर पाते। उन्हें सिर्फ अपने से ही मतलब रह जाता है। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए वे दूसरों का अहित करने से भी नहीं चूकते। 'उग्र' जी ने साम्प्रदायिकता के उस पक्ष को बड़े ही व्यंग्यपूर्ण ढंग से उभारा है। 'उग्र' जी का समय स्वतन्त्रता संग्राम से पहले ही आरम्भ हो गया था। उन्होंने हिन्दू–मुसलमानों के विषाक्त सम्बन्धों को अपनी आँखों से देखा था। इसीलिए इस कहानी में उनका पूर्ण रोष पात्रों और संवादों के रूप में उभरकर आया है।। 'खुदा के सामने' कहानी में भी धर्म और सम्प्रदाय द्वारा व्यक्ति का खुला शोषण होते हुए दिखाया गया है। इस कहानी का घोर सनातनी नास्तिक को धिक्कारते हुए कहता है–''घोर सनातनी–धिक्कार है! तुम पर हजार बार धिक्कार है!! तुम हिन्दू हो। तुम्हारी आँखों के सम्मुख

एक ब्राह्मण विद्वान् का धर्म नाश किया गया और तुम नीरस वृक्ष की तरह नीरव और निश्चल खड़े रह गये!"[3]

नास्तिक – हम जो चुप रह गए उसमें भी कुछ रहस्य था। हमें यह देखने की इच्छा थी कि दूसरे को व्यवस्था देने वाले शास्त्री स्वयं क्या करते हैं? कौन–सा प्रायश्चित करते हैं?"[4] इस प्रकार धर्म को और सम्प्रदाय को राजनीति में घसीटा जाता था।

4.0 भूत–प्रेत व टोने टोटके :

'उग्र' जी का समय ऐसा था, जब शिक्षित समाज कम था। भारत वर्ष ग्रामीण भारत कहलाता था। अस्सी प्रतिशत जनता गाँव में रहती थी और गाँव में अशिक्षा के कारण टोने–टोटके, तंत्र–मंत्र का प्रभाव अधिक था। हालात यहाँ तक भी गंभीर थे कि लोग इलाज के लिए भी तंत्र–मंत्र का सहारा लेते थे। समाज की इसी विद्रूपता का चित्रण 'उग्र' जी ने अपने कथा साहित्य में बड निडर रूप में किया है।

'उग्र' जी की 'पीर' शीर्षक कहानी भी भूत, पिशाच और टोने–टोटकों जैसी फिजूल की बातों पर विश्वास करने वाले लोगों का चित्रण करती है– "मैं उसे डॉ. कृपाल के यहाँ ले चला तो अम्मां ने कहकर रोका कि वह फोड़ा–फुंसी नहीं किसी भूत–चुड़ैल की बाधा का लक्षण है। उन्होंने कहा कि बचपन में उसी जगह उसी तरह मुझे भी दर्द एक बार हुआ तो पल्टू चमार को झाड़कर गंडा बांध देने से अच्छा हो गया था। पल्टू तो बेचारा अब नहीं रहा पर उसकी औरत को वह मंत्र अब भी मालूम है।"[5]

'कढ़ी में कोयला' उपन्यास में सेठ घासीवाल अपने घर काम करने वाले महाराज को अपनी पुत्री से प्रेम सम्बन्ध होने के सन्देह के कारण मकान की तीसरी मंजिल से गिरवाकर मरवा देता है। इस मकान में रहने वाले सभी किरायेदार संकुचित मनोवृत्ति के, भूत–प्रेत में विश्वास रखने वाले हैं। उनका विश्वास है कि हत्या हुए व्यक्ति की आत्मा–प्रेतात्मा बन जाती है। महाराज की हत्या के बाद इस घर में रहने वाले व्यक्तियों में से हर रोज किसी–न–किसी को सपने में उसका प्रेत दिखायी देने लगा– "उस मकान के हर आदमी की खास शिकायत यही कि निहायत भयानक सपना किसी–न–किसी निवासी को रोज ही नजर आता। 'सपना से मुराद सपने' नहीं। मकानवासियों का सपना एक ही होता। पहलवान–सा गठीला, काले रंग का कोई प्रेत जिसकी देह में अधघुसे अनेक छुरे। –'भागो।' – सपना देखने वाले मकानवासियों को प्रेत ललकारता 'इस मकान की नींव में हत्या है, पाप है। यह मकान घीसालाल का नहीं मेरा है– हा–हा–हा–हा। भागो!'[6]

5.0 धर्म में मिथ्याडम्बरों का प्रमुख स्थान :

भारतवर्ष धर्म निरपेक्ष देश है। यहाँ पर तैंतीस करोड़ देवी देवताओं को पूजा जाता है। सत्, त्रेता, द्वापर और कलि, चारों ही युगों में धर्म के विभिन्न रूप देखने को मिलत हैं। जहाँ धर्म मानव की रक्षा के लिए स्थापित किया जाता है वहीं मनुष्य का भी यह कर्त्तव्य बनता है कि वह धर्म की रक्षा करे और उसका पालन करे लेकिन वर्तमान में धर्म की स्थिति बड़ी विचित्र हो गई है। मनुष्य ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए धर्म को एक शस्त्र बना लिया है। 'उग्र' के साहित्य में तो यह विशेष रूप से उभरकर आया है।

वह भारत जिसमें एक ओर सभी को 'एक नूर में सब जग उपजा, कौन भला कौन मन्दा' तथा एक समानता और मानवता की बात करते हैं, वहीं पर 'चंद हसीनों के खुतूत' की बूढ़ी अम्मा केवल मुसलमान के हाथ से पानी पीने को धर्म भ्रष्ट का आचरण मानती है– "नाता कैसे रखा जा सकता है?" पहली बूढ़ी ने कहा, "धर्म तो कच्चा सूत होता है। जरा–सा इधर–उधर होते ही टूट जाता है। फिर हमारा हिन्दू का धर्म। राम–राम! जिसको छूना मना है, सुबह जिसका मुंह देखना पाप है, उसके हाथ से दवनंदन ने जल ग्रहण किया। देवनंदन का खानदान डूब गया। अब उनसे पान–पानी का नाता रख कौन अपना लोक–परलोक बिगाड़ेगा?"[7] इस बात से यह अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है कि हम

International Journal of Information Movement Vol.2 Issue IV (August 2017)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 193-200

सैद्धान्तिक तौर पर भले ही कितने प्रगतिशील क्यों न हो जाएं किन्तु व्यवहारिक तौर पर हमारे समाज में धर्म के नाम पर मिथ्याचरण समाप्त होने में अभी बहुत समय लगेगा।

इसी प्रकार 'मनुष्यानंद' नामक उपन्यास भी छूत–अछूत समस्या पर आधारित है। इस उपन्यास में धर्म के ठेकेदार बने पंडे–पुरोहित दलित लोगों के मन्दिर प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाते हैं। इसी उपन्यास का समाज सुधारक 'मनुष्यानंद' ऐसे लोगों की मिथ्या बातों पर करारा व्यंग्य करते हुए कहते हैं– "एक मरते हुए हिन्दू को ईश्वर के मंदिर में अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना करने न जाने दें। मानों भगवान ने अपने धर्म के क्रय–विक्रय का उन्हें 'सोल एजेंट' नियुक्त किया है। ये हिंसावादी ऐसी पवित्र संस्थाओं की छाती पर क्यों कोदो दला करते हैं।"[8]

ये हमारी विडम्बना ही है कि एक ओर तो हम चांद तारों तक पहुंचने की बात करते हैं और दूसरी ओर मानसिक संकुचन इतना है कि हम दलितों को आज भी मन्दिरों में जाने से रोकते हैं। इसी स्थिति पर मनुष्यानंद उपन्यास का अघोड़ी बाबा भरी भीड़ में ऐसी स्थिति पर व्यंग्य करता हुआ कहता है–

मनुष्यानंद दलितों को मन्दिर में भगवान के दर्शन कराने में सफल हो जाता है लेकिन जात–पात के बन्धनों में बंटे संकीर्ण मनोवृत्ति वाले हमारे समाज के लोग उनके ऐसा करने से मंदिर को ही अपवित्र मान बैठते हैं। उनका विश्वास है कि शुद्धि द्वारा भी मन्दिर को शुद्ध नहीं किया जा सकता।

"जो हो, सारे शहर को यही विश्वास हो गया कि जरूर ही अधोड़ी ने बुधुवा को बाबा के दर्शन कराये हैं। अब यह पवित्रता की पुकार और देवालय की शुद्धि केवल झंप मिटाना है। अधोड़ी योगी है, योगी। वह कुछ न करे, यह और बात है, मगर इच्छा करते ही कर सकता है, सब कुछ। साधारण संसारी उसके पथ पर, रोड़ा तो दूर तिनका भी नहीं डाल सकते।"[9]

हमारी एक ओर त्रासदी यह है कि हम आज भले ही कितने आधुनिक बन गये हैं, मगर भीतर कहीं आज भी हम वही पुराने अंधविश्वासी व रूढ़िग्रस्त हैं। भारतवर्ष साधु–सन्तों का ऋषि–मुनियों का देश कहा जाता है, किन्तु यह भी सत्य है कि इनकी आड़ में झाड़ फूंक करने वाले ओझा, ओघड़ तांत्रिक, अघोड़ी आदि की भी चांदी है। भोली–भाली जनता इनके मायाजाल में आसानी से आ जाती है। इसका वर्णन 'उग्र' जी ने अपने कथा साहित्य में बखूबी किया है।

'मनुष्यानंद' का मौलवी बांझ औरतों को शर्तिया लड़का होने का भरोसा दिलाता है। ये औरतें उसके झांसे में आकर उसके कहे अनुसार धार्मिक अनुष्ठान करती हैं– इसके बाद उसने सभी औरतों से कहा है– कब्र के चारों ओर आसमान की तरफ मुंह कर, आंखें बन्द कर सो जाओ। सोने के थोड़ी देर बाद तुम्हारे ऊपर पाक रुह आयेगी। खबरदार! आंखें न खोलना। नहीं तो, तुम्हारी आशा पूरी न होगी। साथ ही जान का भी खतरा है। कोई तुम्हें कितना भी दिलाये डुलाये–दम साधे पड़ी रहना–हाँ।"[10]

इन सब बातों से स्पष्ट है कि 'उग्र' जी ने अपने कथा साहित्य में उस समय के समाज में फैले धार्मिक मिथ्याडम्बरों का बखूबी वर्णन किया है। उस समय का समाज हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य में इतना उलझा था कि मात्र मुस्लिम औरत से घर का चौका बरतन करवाने से एक हिन्दू परिवार को उस समय का समाज मुस्लिम मान बैठता है। हिन्दू–मुस्लिम धर्म की दीवार के साथ–साथ एक ही धर्म में वर्णन व्यवस्था की विद्रूपता अपने चरम पर थी। अछूतों का तो मन्दिर में प्रवेश तक वर्जित था। लोग भूत–प्रेत, टोने–टोटकों में अधिक विश्वास करने लगे थे।

6.0 सामाजिक संघर्ष एवं धार्मिक पक्ष :

धर्म समाज से जुड़ा है और समाज धर्म से। अर्थात् धर्म और समाज दोनों ही एक दूसरे के निर्माणाधार हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना सर्वथा असंभव–सी जान पड़ती है। समाज में होने वाले किसी भी संघर्ष का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव धर्म पर पड़ना स्वाभाविक ही है। धर्म से जब समाज व्यवस्था की चूल हिलने लगे तो स्वाभाविक ही है कि सामाजिक संघर्ष और धार्मिकता दोनों टकरायेंगे।

'उग्र' जी ने 'खुदा के सामने' शीर्षक कहानी में इसी सामाजिक संघर्ष और धार्मिक पक्ष को बड़ी यथार्थता से प्रस्तुत किया है। इस कहानी में हिन्दू–मुस्लिम दंगों से मरे हुए लोग उस पर पिता

परमपिता परमात्मा के पास पहुंचते हैं। हिन्दू उस परमात्मा को भगवान के नाम से पुकारते हैं और मुस्लमान खुदा के नाम से। वह परमपिता–परमात्मा तो एक है किन्तु धार्मिक संकीर्णता के कारण लोग उसे अपने–अपने मजहबी नाम से पुकारते हैं। साम्प्रदायिकता की आग में जलने वाले यह नहीं जानते कि मजहब के नाम पर लड़ने वालों को खुदा इन्सान नहीं शैतान समझता है– ''मुसलमानों ने फरिश्तों से पूछा, ''क्या यही खुदा है?''

हिन्दुओं ने यमदूतों से पूछा ''क्या यही परमेश्वर है?'' परमेश्वर ने मुस्कराकर कहा, ''तुम मुझे नहीं पहचान सके। अगर तुम में से किसी ने मुझे पहचाना होता तो तुम्हारे बनाये हुए घरों (मस्जिदों, मंदिरों) और तुम्हारी बनाई हुई मूर्तियों के लिए मेरे घरों और मेरी मूर्तियों (मनुष्यों) का नाश न किया जाता। तुम काफिर हो, मलेच्छ हो। राक्षस हो, शैतान हो। उधर हटो! तुम्हारे लिए दोजख की आग घहरा रही है– वहीं जाकर जलो।''[11] 'शाप' कहानी में समाज में हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य यहाँ तक बढ़ जाता है कि मुसलमान एक गाय को हिन्दुओं के मजहब से जोड़कर मार डालते हैं। गाय को बचाने के लिए परमहंस हर मुमकिन कोशिश करता है। वह हिन्दू–मुस्लिम वैमवस्य को मिटाने का प्रयास करता है और अन्त में इस धार्मिक संघर्ष से दुःखी हो इन नकली मजहबों को नष्ट करने का शाप दे डालता है। शाप जैसी घटनाओं के कारण भी सामाजिक संघर्षों में वृद्धि होना स्वाभाविक है क्योंकि इन शापों के फलिभूत होने पर लोगों में वैमनस्य की भावना और धार्मिक कट्टरता बढ़ती है– ''याद रखो, मैं तुम्हें बद्दुआ देता हूँ, शाप देता हूँ। यदि ईश्वर या खुदा सच्चा है तो तुम्हारा नाश हो जाएगा और जल्दी ही तुम्हारे नकली मजहब का लोप हो जाएगा। तुम नहीं देख सकते अंधे हो। मैं देख रहा हूँ। वह देखो! खून का तूफान आ रहा है।''[12] इस प्रकार 'उग्र' जी ने अपने साहित्य में स्पष्ट किया है कि भगवान ने तो इन्सान को एक ही बनाया था किन्तु उस परमपिता परमात्मा के बन्दों ने अपने आप को धर्म के नाम पर बांट लिया। आज भी मजहब के नाम पर लाखों बेकसूरों का खून बहाया जाता है। इस रक्त पात को रोकने के लिए हमें धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर सोचना होगा। 'उग्र' जी ने अपने साहित्य के द्वारा हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य को दूर करने का जो प्रयास किया अगर वही प्रयास समाज का हर व्यक्ति करे तो न तो कश्मीर हिन्दू मुसलमानों के रक्त से लाल हो और न गुजरात में गोधरा कांड हो।

7.0 धर्मांधों की विकृत मानसिकता :

जातीय व्यवस्था में ही धर्म के कट्टरपंथियों ने अपनी मानसिकता को संकीर्णता के घेरे में आबद्ध कर लिया है। 'उग्र' जी भी एक तरह से साम्प्रदायिक वैमनस्य से ओतप्रोत कहानियाँ लिखते रहे हैं। उनकी कहानियों में हिन्दू–मुस्लिम धर्मान्धों की विकृत अथवा संकुचित मानसिकता का अंकन बेबाकी से किया है। डॉ. मधुधर इस संदर्भ में लिखते हैं कि 'उग्र' ने अपनी कतिपय कहानियों में हिन्दू मुस्लिम धर्मान्धों की विकृत मानसिकता का अंकन किया है। इन कहानियों में उन्होंने ऐसे पात्रों की भी रचना की है जो अपने सेवाभाव और मानवप्रेम द्वारा सभी सम्प्रदायों के विश्वासपात्र बनकर अपने नैतिक प्रभाव द्वारा हिंसा और उपद्रवों को रोकने का प्रयत्न करते हैं। ''[13] संकीर्ण मनोवृत्ति रखने वाले इन धर्मान्धी लोगों को मरने के बाद जरूर एहसास होता है कि उनकी लगाई हुई साम्प्रदायिकता की आग में लोगों को दुख, कष्ट और शोक के अलावा कुछ नहीं मिलता है।

'उग्र' ने मूलतः अपनी कहानियों में ही धर्मान्धों की विकृत मानसिकता का बखूबी अंकन किया है। इस दृष्टि से 'खुदाराम', 'मलंग', 'खुदा के सामने', 'दोजख'! नरक! आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। 'दोजख की आग' शीर्षक कहानी के माध्यम से कहानीकार 'उग्र' ने एक व्यक्ति की मृत्यु के कारण हुए धार्मिक उन्माद का बड़ा भयावह चित्रण किया है– ओहो! मैं फोरन पहचान गया। वही जुमा की नमाज का नजारा था। वही मौलवी, वही मुल्ले, वही बूढ़े, वही दीनदार, वही दिल के नाम पर–खुदी के नाम पर–खुदा को बदनाम करने वाले, वही सायंकाल का समय, वही हिन्दुओं का जुलूस, वही मुसलमानों की तकरार, वही बातों का बतंगड़, वही तनातनी, वही आकाश में गर्द का छाना, वही आंधी, वही तूफान, वही मैं (यार आली), वही धर्म के पागलों का आग्रह, वही उत्तेजना, वही विक्षुब्ध समुद्र में फांदना, वही वज्रपात, वही प्रलय।''[14] सभी धर्मों में औरत को सम्मान की दृष्टि से देखने पर बल दिया जाता है फिर चाहे वह औरत किसी भी धर्म की क्यों न हो। धर्मांधी लोग धर्म के इन

सद्विचारों को समझने का प्रयत्न नहीं करते। धर्म के नाम पर मर मिटने वाले, स्वयं को प्रभु के बन्दे कहलाने वाले लोगों द्वारा दूसरे धर्म की औरतों से दुर्व्यवहार करना विकृत मानसिकता का ही परिचय है– ''जल्दी से कुर्सी छोड़, मेरी बीवी के संभलने से पहले ही, उस दुष्ट ने उस हूर की पुतली को अपनी मजबूत बाहों में कस लिया। इतने जोर से कस लिया कि वह हिल न सके न डुल सके। हमारी आँखों के सामने उसने सैंकड़ों चुम्बनों से मेरी प्राण प्यारी के अधरों, कपोलों, आँखों और मस्तक को भर दिया।''[15]

वस्तुतः खुदाराम धर्मान्धी लोगों की विकृत मानसिकता के प्रभाव से सर्वथा मुक्त है इसलिए वह एक मुस्लिम औरत को साम्प्रदायिक तनाव फैलने से पहले रोक लेने का आग्रह करता है। वह जानता है कि यदि धर्मांधी लोगों को न रोका गया तो इनकी शैतानी खोपड़ी में न जाने कौन–सी बात घर कर जायें। इसलिए वह मुस्लिम औरत से सुख और शान्ति की भीख मांगता है– ''चुप क्यों हो गयी माँ? तुने मुझे भीख देने की कसम खाई है। मैं तेरे हित की बात कहता हूँ। इस रक्तपात में पुरुषों के नहीं स्त्रियों के कलेजे का खून बहाया जाता है। स्त्रियां विधवा होती हैं, माताएँ अपने बच्चे खोती हैं, बहने अपमानित होती हैं। पुरुषों की यह ज्यादती तुम्हीं लोगों के रोकने से रुकेगी।''[16] इन बातों का उस मुस्लिम औरत पर गहरा असर होता है।

'दोजख! नरक!' शीर्षक कहानी में यार अली नाम एक मुसलमान व्यक्ति खुदा की मेहरबानी पाने के लिए धर्म के नाम पर हजारों हिन्दुओं को मारता है तथा इसी लड़ाई में स्वयं भी मर जाता है। किन्तु भगवान की नजर में धर्म के नाम पर लड़ने वालों के लिए स्वर्ग की बजाए नरक या दोजख की आग ही होती है– ''मुलजिम (सिटपिटाकर) नहीं। मैं जब से पैदा हुआ तभी से यह सुन रहा था कि हिन्दू बदजात और नापाक काफिर होते हैं जिन्हें मारने से, सताने से, जन्नत मिलती है। हूरें मिलती हैं, खुदा खुश होता है। मैंने जो कुछ भी किया है, तेरी खुशी के लिए, तेरी मेहरबानी के लिए।''[17]

इस प्रकार 'उग्र' जी ने अपने साहित्य में धर्मांधों की विकृत मानसिकता तथा धर्म के ठेकेदारों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। पण्डे पुरोहित और मौलवियों का कार्य मनुष्यों को अच्छा सद्गुणों में युक्त जीवन जीने का रास्ता दिखाना है किन्तु इसके विपरीत ये अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए संकीर्णता के बंधनों में बंधे समाज को हिन्दू–मुस्लिम धर्मों व एक ही धर्म को विभिन्न मतों में बांटकर लोगों को आपस में लड़वाते हैं। उनका ऐसा करने का मंतव्य लोगों को ठगना व अपनी स्वार्थसाधना की पूर्ति करना है।

8.0 पाप–पुण्य एवं धर्म की नवीन व्याख्या :

आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में लोगों ने पाप को पुण्य मान लिया है और इसी कारण वे पुण्य कार्य को नहीं करते अर्थात् उसकी नजर में पाप और घृणित कार्य ही पुण्य का स्वरूप है। 'उग्र' जी ने अपनी कहानियों में पाप–पुण्य की इस नवीन व्याख्या को परमहंस स्वामी के माध्यम से व्यक्त किया है। ''उसी पाप को पुण्य, अधर्म को धर्म समझने वाले राक्षस हिन्दुओं और मुसलमानों का अस्तित्व डूब जायेगा। मैं जाता हूँ। तुम लोग नाचो, कूदो और खून की होली खेलो। ईश्वर की इच्छा, उसी रात को हमारे गांव में भयानक आंधी आई और अपने साथ आग की चिंगारो लेकर आई। देखते–देखते सारा का सारा गांव जलकर खाक हो गया।''[18]

आज पाप को धर्म का कार्य माना जाता है। लोग सशस्त्र मंदिरों और मस्जिदों में प्रवेश करने लगे हैं। उन्हें शस्त्र लेकर जाने में ही धर्म की रक्षा मालूम होती है – ''कस्बे के हजारों हिन्दू मर्द, समाज मंदिर की ओर वेद भगवान के जुलूस में शामिल होने के लिए चले गए। मुसलमान पुरुष भी, पुराने पीर की मस्जिद में जुलूस में बाधा डालने के लिए सशस्त्र एकत्र हो गए। हिन्दू और मुसलमान दोनों के घरों पर या तो बूढ़े बचे थे या बच्चे और स्त्रियाँ। घर–घर का दरवाजा भीतर से बन्द था।''[19]

इस प्रकार 'उग्र' जी के अपने साहित्य में पाप–पुण्य की नवीन व्याख्या को उभारा है। हिन्दू–मुस्लिम दोनों ही धर्मों के लोग अपने–अपने मजहब के नाम पर लड़कर असंख्य बेकसूर लोगों की जान लेते हैं। उनकी नजर में किया गया यह पुण्य का कार्य भगवान की नजर में पाप का कार्य है। धर्म के नाम पर चली आ रही यह लड़ाई आज के युग में भी विद्यमान है। आज के राजनेता स्वार्थसिद्धि के लिए भगवान के नाम पर यात्राएँ निकालते हैं। वे पुण्य का वास्ता देकर आम लोगों को धार्मिक

संकीर्णता में बांध देते हैं। आज बड़े–बड़े धर्माधीश भी लोक–परलोक सुधारने का रास्ता कुछ इसी प्रकार से दिखाते हैं। किन्तु अगर हमें वास्तव में लोक–परलोक को सुधारना है तो विवेक में सोचना होगा कि क्या पुण्य है और क्या पाप।

9.0 आस्था/अनास्थावादी विचारधारा :

किसी भी धर्म या व्यक्ति के प्रति विश्वास आस्था और किसी भी धर्म व व्यक्ति के प्रति अविश्वास अनास्थावादी वृत्ति कहलाती है। धर्म के साथ ही (विश्वास) आस्था, अविश्वास, अनास्थावादी विचारधाराएँ भी जुड़ी हैं। पांडे्य बचेन शर्मा 'उग्र' के साहित्य में इसी आस्था और अनास्थावादी विचारधारा का अंकन बखूबी हुआ है। 'खुदाराम व चन्द हसीनों के खुतूत' में लोगों को जब खुदाराम फकीर के करिश्मे के बारे में पता चला तो वह उसमें आस्थावादी दृष्टिकोण के द्वारा अपने कार्यों की सिद्धि का कारण उसी को मानते हैं– "दूसरे दिन उसी चमारिन ने कस्बे भर में यह बात मशहूर कर दी कि खुदाराम पागल नहीं, होशियार है। मालूमी आदमी नहीं, फकीर है, देवता है। फिर तो हिन्दू मुसलमान दोनों जाति के लोगों ने विशेषतः स्त्रियों ने खुदाराम को न जाने क्या–क्या बना डाला। कितनों के बच्चे उसकी ऊटपटांग औषधियों से अच्छे हो गए। कितनों को खुदाराम की कृपा से नौकरी मिल गई। कितने मुकद्में जीत गए। कस्बा–का–कस्बा उन्हें पूजने लगा।"[20]

इस प्रकार 'उग्र' जी के साहित्य में भगवान के प्रति आस्था और अनास्था दोनों दृष्टिकोण उभर कर आए हैं। 'उग्र' जी के साहित्य से तो वही स्पष्ट होता है कि अगर विश्वास है तो भगवान है, विश्वास नहीं तो कुछ भी नहीं। मनुष्य की दृढ़ आस्था से तो पत्थर में भी भगवान प्रकट हो सकता है। यही आस्था 'खुदाराम व चन्द हसीनों के खुतूत' उपन्यास में लोग खुदाराम पर करने लगते हैं। उसकी ऊटपटांग औषधियों से कितने ही बच्चे ठीक हो गये। कितनों को नौकरी मिल गयी। कितनों के घर बस गये।

10.0 वर्ण–व्यवस्था व अछूत–व्यवस्था :

भारत वर्ष में वर्ण व्यवस्था के आधार पर जातियाँ बंटी हुई हैं। इन जातियों से आगे उपजातियाँ बनी किन्तु चंद स्वार्थी तत्वों ने इस जातिगत विषमताओं को अछूत–व्यवस्था में बदल डाला है। फलस्वरूप आज के इस वैज्ञानिक युग में अछूत–व्यवस्था जैसी घृणित कुरीति विद्यमान है। भारतीय समाज में वर्ण–व्यवस्था पर आधारित निम्न जातियों पर प्राचीन काल से ही अत्याचार होते आ रहे हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसे वर्णों में बंटा भारतीय समाज आज इन वर्णों में फंसकर रह गया है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था का मूलाधार वर्ण व्यवस्था था। 'वर्ण' यद्यपि रंग और चयन दोनों ही अर्थों का द्योतक ह किन्तु बाद में इस शब्द को 'जाति' के अर्थ में रूढ़िगत प्रयोग किया जाने लगा। इस जातीय व्यवस्था का मूलाधार गुण अथवा श्रम न होकर जन्म या हमारे रीति–रिवाज, रहन–सहन सभी जातीय व्यवस्था द्वारा निर्धारित होने लगे। इस जातीय व्यवस्था ने अनेक विषमताओं को जन्म दिया। आज भी भारतीय समाज इन समस्याओं अथवा विषमताओं से छुटकारा नहीं पा सका।

भौगोलिक और सांस्कृतिक की दीवारों से यहाँ अभिप्राय जातीय व्यवस्था से है। वास्तविकता भी यही है कि इसी जातीय व्यवस्था के कारण शूद्र जाति के लोग आज भी अस्पृश्यता का दंश भोग रहे हैं। इसी वर्ण व्यवस्था का उल्लेख पांडे्य बेचन शर्मा 'उग्र' के साहित्य में व्यापक स्तर पर हुआ है। उन्होंने 'कढ़ी में कोयला' शीर्षक उपन्यास की भूमिका में लिखा भी है। "'कढ़ी में कोयला' में जैसे एक या एकाधिक भारतीय समाज के बिगड़ते स्वास्थ्य पर निरोग प्रकाश डालने की कोशिश मैंने की है। वैसी ही कोशिशें मैं एक जमाने से करता आ रहा हूँ। मेरे सभी उपन्यास, उपन्यास कहीं कम और सामाजिक रोगों के एक्स–रे फोटो कहीं ज्यादा है। 'चन्द हसीनों के खुतूत' हिन्दू–मुस्लिम समस्या पर है। (बुधुवा की बेटी) 'मनुष्यानंद' में अछूत समस्या है।"[21] "अछूत समस्या को दूर करने के सतुत्य प्रयास महात्मा गांधी ने भी किए थे। इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम शूद्रों को 'हरिजन' नाम दिया। बापू को अटल विश्वास था कि हरिजनों को साथ–लिए बिना हम अपनी मंजिल तक नहीं पहुंच सकते। यही कारण था कि उन्होंने गोलमेज वार्ता के पश्चात् हरिजन बस्ती में ही निवास करने का निश्चय किया था।"[22] 'मनुष्यानंद' उपन्यास में एक घटना के माध्यम से पांडे्य बेचन शर्मा 'उग्र' ने अछूत व्यवस्था का

मार्मिक अंकन किया है– ''भीड़ के पिछले भाग में दो तीन आदमी इस बुधुवा–कांड पर आलोचना करने लगे– ''अरे, अरे!! औघड़ बाबा ने तो बुधुवा को इतनी आसानी से छू लिया मानो किसी ऊँची जाति के आदमी का स्वागत करते हों। आखिर औघड़ ही ठहरे, इनके लिए ऊँच–नीच का भेद कैसा।''

''अब हम सब को भी उसी हाथ से छूएंगे। न जाने क्यों मेरे तो रोंगटे खड़े हा रहे हैं। मुझसे भंगी छू गया होता तो मैं बिना स्नान किये अपने 'मन' को शुद्ध न समझता।''[23] कई बार एक ही जाति के लोग एक दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं। ऐसी प्रवृत्ति नीच जाति के लोगों में अधिक पाई जाती है– ''एक भंगी कहने लगा– गुस्सा करता रहा, अम्मां। बड़ा गुस्सा करता रहा जमादार साहब। बोलता रहा कि तीन दिन से साला बुधुवा काम पर हाजिर नहीं है। उसके हलके के लोगों के मकान बदबू से भर गए हैं, सड़कें कूड़ाखाना हो रही हैं। इस बार उसे बिना जेल भिजवाये या जुर्माना करवाये न रहूँगा।''[24]

इस अछूत समस्या के कारण स्वयं अछूत भी हीन–भावना का अनुभव करते हैं। रधिया की मानसिक स्थिति का चित्रण देखिए– ''मैं भंगिन की बेटी, वह रईसजादे–हम में मेल–सम्बन्ध कैसे हो सकता है। वह तो–यद्यपि मुझ पर प्रकट नहीं होने देते तथापि मैंने इसका अनुभव किया है– मुझे गाड़ी पर चढ़ाने और उतारने से पहले सावधानी से देखते हैं। शायद इसलिए कि कोई उन्हें–मुझ छोटी जात वाली के साथ देखकर–बदनाम न करे।''[25]

हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था में इतनी अधिक खामियाँ हैं कि किसी भी व्यक्ति का धर्म भ्रष्ट होने पर उसे धर्म से निष्कासित कर दिया जाता है। जबकि अन्य धम वाले उसे बड़ी इज्जत से अपने धर्म में सम्मलित कर लेते हैं। धर्म भ्रष्ट हुए देवनंदन को मुसलमान बड़ी इज्जत से अपने धर्म में मिला लेते हैं– ''उधर देवनंदन की दुर्दशा का हाल सुनकर मुसलमानों ने बड़ी प्रसन्नता से अपनी छाती खोल दी। कस्बे के सभी प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित मुसलमानों ने देवनंदन को अपनी और बड़े प्रेम, बड़े आदर से खींचा।''

''चले आओ! हम जात पात नहीं, केवल हक को मानते हैं। इस्लाम में मुहब्बत भरी हुई है। खुदा गरीब परवर है। हिन्दुओं की ठोकर खाने से अच्छा है कि हमारी पलकों पर बैठो मुसलमान हो जाओ।''[26] अपनी जाति विशेष से मनुष्य इतना अधिक जुड़ जाता है कि अन्य जाति में मिल जाने पर भी उसे अपनी सभ्यता व रीति–रिवाज हिन्दू धर्म अपनाने को कहता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'उग्र' जी छूत–अछूत में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने वर्ण व्यवस्था में छूत–अछूत जैसी बुराइयों को सूक्ष्मता से परखा व अपने साहित्य में बड़े यथार्थ धरातल पर किया है। इस प्रकार छूत–अछूत के भेदभाव को मिटाने में 'उग्र' जी हमारे समाज के पथ प्रदर्शक बने।

11.0 संदर्भ

1. डॉ. शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास : बदलते सन्दर्भ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सं. 1981, पृ. 124
2. काका कालेलकर, युगानुकूल जीवन दृष्टि, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1888, पृ. 2
3. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऐसी होली खेलो लाल, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, सं. 1964, पृ. 49–50
4. वही, (खुदा के सामने), पृ. 57
5. पांडे्य बेचन शर्मा 'उग्र', कला का पुरस्कार, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, सं. 1955, पृ. 100
6. पांडे्य बेचन शर्मा, खुदाराम व चन्द हसीनों के खतूत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1993, पृ. 13–14
7. पांडे्य बेचन शर्मा 'उग्र', कढ़ी में कोयला, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., सं. 1999, पृ. 31
8. पांडे्य बेचन शर्मा 'उग्र', मनुष्यानंद, मतवाला मंडल कार्यालय, कलकत्ता, सं. 1928, पृ. 207–208
9. वही, पृ. 210
10. वही, पृ. 57

11. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऐसी होली खेलो लाल, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सं. 1964, पृ. 65
12. वही, खुदा के सामने (शाप) आत्माराम एण्ड संस दिल्ली, सं. 1964, पृ. 77
13. मधुधर, 'उग्र' का कथा साहित्य, नीलाभ प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1977, पृ. 43
14. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', दोजख की आग (मुक्ता), आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सं. 1993, पृ. 29
15. वही, पृ. 33
16. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', खुदाराम (ऐसी होली खेलो लाल), आत्मराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सं. 1964, पृ. 88
17. वही, पृ. 36
18. वही, पृ. 77
19. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', चंद हसीनों का खुतूत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली सं. 1993, पृ. 23
20. वही, पृ. 21
21. वही, कढ़ी में कोयला की भूमिका से उद्धृत, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा.लि. नई दिल्ली, सं. 1999, पृ. 7–8
22. डॉ. गार्गी शरण मिश्र, मानव, अक्षर प्रकाशन, प्रा.लि., दिल्ली, सं. 1979, पृ. 82
23. वही, मनुष्यानंद, मतवाला मंडल कार्यालय, कलकत्ता, सृ. 1928, पृ. 36
24. वही, पृ. 48
25. वही, पृ. 163
26. पांड्ेय बेचन शर्मा 'उग्र', खुदाराम और चंद हसीनों का खुतूत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली सं. 1993, पृ. 15